

## कार्यपालिका और न्यायपालिका की आपसी सहयोग

पर

भोपाल में 03 सितम्बर, 2005 को हुई

मुख्य न्यायाधिवक्तियों की कार्यशाला में

माननीय श्री रमेश चन्द्रजी लाहोटी, भारत के मुख्य न्यायाधिवक्ता का सम्बोधन

\*\*\*\*\*

मध्य प्रदेश के राज्यपाल महामहिम डॉ० बलरामजी जाखड़ /

मध्य प्रदेश के मुख्य न्यायाधिवक्ता न्यायमूर्ति श्री रवीन्द्रन /

मुख्य मंत्री श्री बाबू लालजी गौर /

यहाँ आज ये पहला अवसर है जब कि संविधान की जो तीन प्रमुख अंग हैं प्रशासन और व्यवस्था की – न्यायपालिका कार्यपालिका और विधायिका। इन सभी के प्रमुख आज इस मंच पर आसीन हैं और उनकी प्रतिनिधित्व की उपस्थिति का उल्लेख करते हुए मैं मानता हूँ कि उनके संबोधन में आप सबका संबोधन सम्मिलित है। आदरणीय देवियों और सज्जनवृन्द! मैं मध्य प्रदेश शासन और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय . यहाँ के मुख्य मंत्रीजी, यहाँ के मुख्य न्यायाधिवक्ता और सर्वोपरि यहाँ के महामहिम राज्यपालजी – इन तीनों का हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ इसलिए आज के इस आयोजन के लिए कि “शीघ्र एवं सुलभ न्याय – न्यायपालिका और कार्यपालिका का आपसी सहायोग” इस विषय पर कार्यशाला आयोजित की गई है और इसका शुभारंभ करने का शुभ अवसर एन्होंने मुझे प्रदान किया। मेरे विगत भेपाल प्रवास में मैंने माननीय मुख्य मंत्रीजी से ये आग्रह किया था कि आपके कार्यकाल में मध्य प्रदेश की न्यायिक अधिकारियों को एक स्थान पर बैठकर चर्चा करने का कुछ अवसर मिलना चाहिए। वे स्रोत गुण वाले व्यक्ति हैं, उनसे कहा कि न केवल पूरा न्यायिक परिवार इकट्ठित हो, क्यों न हमारा कार्यपाल परिवार भी इकट्ठित हों और वे सब मिलकर चर्चा करें कि किस प्रकार इस प्रदेश के नागरिकों को, इस देश के निवासियों को शीघ्र, सस्ता और सुलभ न्याय मिल सकता है। उसी दिन ये चर्चा भोजन के समय हुई थी और उसी दिन मैं महामहिम राज्यपालजी के साथ बैठकर भोजन कर रहा था तो मैंने उन्हें इस बात का संकेत दिया उन्होंने पूर्ण आमोदन किया और मुझे कुछ ऐसा लगने लगा है कि यदि बातचीत भोजन के अवसर पर की जाए तो उसकी सफल पूर्व होती है और उसीका परिणाम है मुझे विश्वास था कि ये कार्यक्रम जरूर आयोजित होगा किंतु इतना शीघ्र आयोजित होगा इसकी मैंने अपेक्षा नहीं की थी। मैं माननीय मुख्यमंत्रीजी को उनकी उम्र का ध्यान रखते हुए भी उनको सादुवाद देना चाहता हूँ कि उनके चिंतन में गति है, उनके शरीर में शक्ति है और उनके स्वभाव में भक्तिभाव है। इसका मिलाजुला परिणाम है कि आज इतनी वृद्धगति से ये आयोजन आज हमारे सामने प्रस्तुत है। मैं माननीय विधि मंत्रीजी का भी ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। मैं बड़ी गंभीरता और एकाग्रता के साथ उनका वक्तव्य सुन रहा था। उन्होंने कुछ संकेत दिया कि किस प्रकार हम उपलब्ध वैधानिक प्रावधानों का प्रयोग करते हुए अथवा किंचित संशोधन करते हुए – जैसे विधि प्रक्रिया संहिता की धारा निवास। इनका प्रभावी रीति से उपयोग करते हुए हम शीघ्र सुलभ न्याय की उपलब्धि कर सकते हैं। मैं इस विषय पर थोड़ा कुछ मिनटों के बाद लौटकर आऊँगा किंतु तत्काल मैं इतनी बात अवश्य कहना चाहूँगा कि मैं आज आपको मध्य प्रदेश की विधि मंत्री के रूप में पदासीन देखकर इस देश की जनता और मुख्य मंत्रीजी का आभार ज्ञापित करना चाहता हूँ और आपको

बधाई देना चाहता हूँ कि आपका चिंतन स्वस्थ और सकारात्मक है। आप नाम से नरोत्तम हैं ये तो आपके परिचय से विदित हो गया किंतु जो संकेत आपने दिया है उस संकेत की दिशा में क्रियान्वन करते हुए यदि कोई ठोस कदम आप उठाएंगे तो इस प्रदेश की कार्यपालिका और न्यायपालिका यह कह सकेगी कि आप ने केवल अपने नाम से बल्कि अपने काम से भी नरोत्तम हैं। मैं आगे आकर थोड़ा सा इस विषय पर चर्चा करने की आपसे अनुमति चाहूँगा ।

भारत का संविधान बहुत अद्भुत दस्तावेज है। आज संयोग से 2001 में प्रकाशित की हुई यह पुस्तक मेरे हाथ में आ गई । 5 वर्ष पहले मैंने इस पुस्तक के प्रस्ताव में लिखी थी, संयोग से यह पुस्तक आज प्रातःकाल मेरे हाथ में आ गई। मैं उसकी चार पंक्तियाँ आपके समक्ष भारत की संविधान का चर्चा करते हुए आपके सामन पढ़ना चाहता हूँ और फिर अपने मूल विषय पर। मैंने प्रातःक में 9 जून 2001 को लिखा था सृजन, चिंतन और लेखन में श्रेष्ठता की पराकृष्टा के प्रकूप विश्व के महानतम और विशाल दस्तावेजों में एक भारत का संविधान, भारतवर्ष की मनीषियों की रचना है जिन्होंने भारत माता की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष तो किया ही था वो दूरदृष्टि भी रखते थे और लोक जीवन, प्रशासन और नागरिकों में उच्च आदर्शों की स्थापना के लिए संकल्पित की। देश की भौगोलिक विस्तार और सांस्कृतिक विविधता की यश किंचित परस्पर विरोधाभासी घटनों के बीच एकात्म स्थापित करने के लिए किया गया उनका विचारित मंथन संविधान की सृजन की पृष्ठभूमि में दृष्टिगोचर होता है। संविधान कोई समसाम्य विधान नहीं है। ये सार्वभूम, समयसापेक्ष, चिरंतन और आधारभूत विधि है। अन्य विधियों और विधि की शासन की स्थापना का स्रोत है। 51 वर्ष की आयु में भी भारत का संविधान परीक्षा की घड़ियों से गुज़र रहा है। डॉ अम्बेडकर और डॉ राजेंद्र प्रसाद दोनों ने ही ये कहा था कि संविधान अपने आप में निर्जीव है। उसे वे जीवन देंगे जिनके हाथों में उनका क्रियान्वन होगा। जिन्हें देश के नागरिक भारत का नेतृत्व देने चुनेंगे वे ही संविधान की तत्सम सफलता और सार्थकता की ओर ले जाएंगे। मुझे लगता है कि 4/5 वर्ष पूर्व लिखी गई पंक्तियाँ आज के समय में बहुत सामयिक है । संविधान ने प्रशासन के लिए तीन अंगों की कल्पना की – विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका और इनके बीच एक संतुलन बना रहे। तीनों के अधिकारों की चर्चा कीए तीनों के कर्तव्यों की चर्चा की और इस बात की आंतरिक यांत्रिक व्यवस्था की कि उनके बीच ऐसा कोई अवसर न आए कि कोई अपने अधिकारों का अतिरेय करें और उच्चतम संस्था का दुरदक्षण करें। वे एक दूसरे का नियंत्रण करें, ऐसी व्यवस्था हमारे संविधान के निर्माताओं ने की। आज इनमें तीन में से दो अंगों के सदस्य – न्यायपालिका और कार्यपालिका एक साथ बैठ रहे हैं, किसी स्वार्थ के लिए नहीं, आज उनका ये उद्देश्य नहीं है कि हमारी कुछ मांगें हैं इन्हें पूरा करो। आज वे इकत्रित हुए हैं परमार्थ की दृष्टिकोण से। वे चाहते हैं कि हम कैसे मिलकर काम करें ताकि इस प्रदेश के व्यक्तियों को इस प्रदेश के नागरिकों को शीघ्र और सुलभ न्याय मिल सके। इन दोनों का साथ-साथ आना जरूरी क्यों है? एक शायर ने लिखा है –

कि मंज़िल जुदा जुदा हैं,  
मक्सद जुदा जुदा हैं

हमारी मंज़िल भी अलग-अलग हैं हमारे इरादे भी अलग-अलग हैं। तो ये प्रजातंत्र है तो ये कैसा होगा?

कि मंज़िल जुदा जुदा हैं,

मक्सद जुदा जुदा हैं  
ये भीड़ तो है लेकिन  
कोई कारवों नहीं है।

ये हर व्यक्ति अलग तरह से सोचना चाहता है और हर व्यक्ति यदि अपने इरादे कुछ और रखता है तो प्रजातंत्र की स्थापना तो नहीं हो सकती, भीड़तंत्र की स्थापना हो सकती है। और, इसलिए ये जरूरी है कि हमारे संविधान ने जिस विधि की कल्पना के लिए तीन अंगों की रचना की उसके व्यक्ति कभी कभी साथ साथ बैठकर चर्चा करें कि अंततोगत्सव जिस विधि की स्थापना का उद्देश्य और संकल्प भारत की संविधान ने किया है उसकी पूर्ति हम कैसे कर सकते हैं। यदि भारत के संविधान और उसके अंतरिक्त रचित प्रशासन व्यवस्था की कल्पना एक शरीर के रूप में की जाए तो मैं ये कहूंगा कि शरीर में मस्तिष्क विधायिका है, इस शरीर की इंद्रियां—हाथ और पैर—कार्यपालिका है और न्यायपालिका का स्थान हृदय का है जो रक्त का संचार भी करता है विधान की रचना करती है, श्रोद्धारक है और विधायिका द्वारा रची गई विधान इसलिए श्रोद्धारिक है क्योंकि विधायक लोकप्रतिनिधि होते हैं गिने चुने विधायक विधान सभा में बैठकर जिस विधान की रचना करते हैं उनकी आवाज़ में प्रदेश के जनता की आवाज़ छिपी हुई होती है। इसलिए विधायिका द्वारा रचा गया विधान वो विधान है जिसे इस प्रदेश की जनता जानती है और इसलिए न्यायरधीश के पद पर बैठकर जब हम विधान का निर्वचन करते हैं **interpretation of Statues** करते हैं या किसी विधि की प्रावधान की व्याख्या करते हैं तो हम इस **presumption** के साथ चलते हैं कि ये विधान सही है और संविधान की अपेक्षाओं को पूरा करता है। हाँ यदि उसमें की .. ..... है तो उसका कोई समाधान हो सकता है उसे करने का प्रयास करते हैं। भारत के संविधान ने कार्यपालिका पर ये ज़िम्मेदारी सौंपी है कि जब विधायिका विधान की रचना कर दे तो विधान के द्वारा रची गई मर्यादाओं के अंतर्गत रहते हुए कार्यपालिका नीति का निर्धारण करें, विधान का पालन करें, लोक कल्याणकारी योजनाओं का सृजन करें और कानून व्यवस्था का पालन कराएं। ये ज़िम्मेदारी कार्यपालिका पर सौंपी है। न्यायपालिका पर ये ज़िम्मेदारी है कि विधायिका द्वारा रची गई विधानों का संविधान की कसौटी पर परिश्रय करे और ये देखें कि विधान के अनुसार कार्यपालिका काम करती है, यदि विधायिका ने जो उत्तरदायित्व कार्यपालिका पर सौंपे हैं यदि उनका पालन नहीं करती तो पालन कराएं और यदि विधायिका द्वारा रचे गए विधान की मर्यादाओं के बाहर जाकर कार्यपालिका कोई कार्य करती है, अपनी सीमाओं का उल्लंघन करती है तो सीमा के बाहर जाकर किए गए कार्यों को ध्वस्त कर दे। ये ज़िम्मेदारी न्यायपालिका पर सौंपी है। मुझे भारत की स्वतंत्रता, जिसके लिए लोगों ने अपनी जान कुर्बान करी और ये तो हमारी बेशकीमती आज़ादी है और जो मूलभूत अधिकारों का रचना हमारे संविधान में की गई है इन सबकी रक्षा की ज़िम्मेदारी न्यायपालिका पर सौंपी गई है। मैं इस भूमिका पर ये बात इसलिए कह रहा हूँ कि जब मैं न्यायपालिका और कार्यपालिका की परस्पर संबंधों की चर्चा करूँगा और परस्पर, स्वस्थ और उचित संबंध व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है ताकि हम लोग एक दूसरे से दूर रहकर भी एक ही मंज़िल की ओर बढ़ें उसके लिए इस बात को समझ लेना बहुत जरूरी है। मैं आज सुबह एक हिन्दी की समाचार पत्र मैं हवाई जहाज में पढ़ रहा था उसकी चार पंक्तियां मुझे बहुत अच्छी लगी मैं लिखकर लाया हूँ। मैं आपके साथ बॉटना चाहता हूँ न्यायपालिका के संदर्भ में। और इन चार पंक्तियों में खुली छत का संकेत है भारतवर्ष की स्वतंत्रता और दिए प्रतीक हैं नागरिकों की अधिकारों का तो खुली छत यानि हमारी आज़ादी और जलते हुए दिए यानि हमारे अधिकार इन दो अर्थों को पृष्ठभूमि में रखते हुए इन चार पंक्तियों को सुनिए।

जरा सा कतरा अगर आज कहीं उमड़ता है  
तो समुंदरों ही के लेहजे में बात करता है।  
खुली छतों के दिए कबके बुझ गए होते  
कोई तो है जो हवाओं के पर कतरता है।।

ये जिम्मेदारी संविधान में है न्यायपालिका की। हम अपनी सीमाओं में रहें और ये देखें कि यदि उसके पंख बहुत बढ़ गए हैं तो ये देखना जरूरी है कि उसे कतर दिया जाए। यदि हमारा संवैधानिक प्रजातंत्र जीवित रहना है और इस देश के नागरिकों को अपना अधिकार मिलना है मूलभूत अधिकार तो बहुत दूर की बात है — मैं अभी महामहिम राज्यपालजी से चर्चा कर रहा था कि किसी दिन का भी अखबार उठाकर देखलीजिए कि देश में आज जो घटनाएं हो रही हैं हमें उन्हें देखकर शर्म अनुभव होती है। हम ऐसे प्रजातंत्र में रहते हैं। — आज 55, 56 वर्ष व्यतीत हो गए जि दिन हमने अपना संविधान अंगीगृत किया था। किंतु संविधान की एक भूमिका जिस सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की चर्चा की गई है उसमें एक हद तक हम पहुंच सके हैं। यदि हम इसका विश्लेषण करें दिल में दर्द होगा, इस हद तक .....। किंतु मैं यदि ये कहूं कि ये जिम्मेदारी किसी अंग विशेष की है तो मैं गलत नहीं अन्याय कर रहा हूं। संविधान की रक्षा करना संविधान की मूल्यों की स्थापना करना और संविधान की अपेक्षा के अनुरोध प्रत्येक व्यक्ति को न्याय मिल सके शीघ्र मिल सके सुलभ हो ये जिम्मेदारी हम सबकी है। न तो कार्यपालिका और न्यायपालिका मिलकर ये जिम्मेदारी विधायिका पर ठहरा सकते हैं और न ही विधायिका और कार्यपालिका ये कह सकती है कि ये जिम्मेदारी न्यायपालिका की है। यदि सरल भाषा में और संक्षेप में बात करें तो तीनों अंगों के सदस्य अपनी जिम्मेदारी का अनुभव करें, अपनी मर्यादा में रहें और एक दूसरे को सक्षम बनाने का प्रयास करें ताकि हमारे मिलेजुले प्रयास का लाभ इस प्रदेश के इस देश के नागरिकों को और निवासियों को मिल सके। और इस सारी बात में शेष सारी चर्चा समान है।

मैं केवल उदाहरण के तौर पर अपनी कुछ बातें आपके सामन रखना चाहता हूँ। कार्यशाला में आप विस्तार में चर्चा करें। अब **criminal justice** की बात ले लीजिए। हम रोज समाचार पत्र में पढ़ते हैं इस विषय पर कई बार जाँच भी हुई है, अन्वेषण हुए हैं, सच सामने आए हैं, सिफारिशें भी हुई हैं उस पर कितना अमल हुआ है ये एक और बात है। किंतु पहले दिन से शुरू करें कि जो व्यक्ति जिसके साथ कोई अपराध हुआ है वो जब थाने में अपनी रिपोर्ट लिखाने जाता है वहाँ तो पहले तो उसके साथ अत्याचार ये हुआ कि उसके साथ अपराध हुआ और दूसरा अत्याचार ये होता है कि वो थाने में रिपोर्ट लिखाने जाता है। उसकी दुख भरी कहानी वहाँ से शुरू हो जाती है उसके बाद अन्वेषण, उसके बाद न्यायालय में मुकदमा या चलान के लिए पेश होना, फिर गवाही, फिर गवाहों की मुख्य परीक्षण, प्रतिपरीक्षण — इसकी कोई सीमा नहीं है, सुनवाई और निर्णय। अभी हमारे मुख्य मंत्रीजी कह रहे थे कि चीन में ऐसी व्यवस्था है कि तीन साल में मुकदमे का फैसला हो जाता है। ऐसी व्यवस्था तो हमारे यहाँ भी हो सकती है। किंतु चीन में और हमारे यहाँ अंतर है। उसमें कोई संदेह नहीं। यदि किसी देश में वहाँ कि परिस्थिति में उन्होंने ऐसी पद्धति बना रखी है जिसके द्वारा शीघ्र तुरन्त न्याय होता है तो हमें उनके अनुभव से लाभ लेना चाहिए, उनकी न्याय व्यवस्था का बारीकी से अध्ययन करना चाहिए और ये देखना चाहिए कि उन्होंने अपने देश में — क्योंकि न्याय के जो गुढ़ मूल सिद्धांत हैं आप विश्व में कहीं भी चले जाइए वही है — किंतु प्रक्रिया का अंतर होता है। अपराधी को सज़ा मिलना चाहिए, निर्दोष

को मुक्त कर देना चाहिए आधार भूत सिद्धांत जो हैं विश्व के किसी भी कोने में इसमें कोई मतभेद नहीं है। किंतु इस सिद्धांत की प्राप्ति कैसे हो इसकी प्रक्रिया के संबंध में देश की जो राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इसके आधार पर अंतर बढ़ जाता है। मैंने अभी कुछ देर पहले चर्चा करते हुए कहा था और मैंने प्रधान मंत्रीजी को एक पत्र भी लिखा मैंने उसमें आग्रह किया है कि आज हमारे आजादी को 55 से अधिक साल हो गए हर क्षेत्र में षोध हुआ है, अन्वेषण हुआ है, कुछ सिफारिशें आई हैं, कुछ पर अमल हुआ है, कुछ पर नहीं हुआ। किंतु दो क्षेत्र ऐसे हैं जो सर्वथा अपेक्षित हैं। पिछले 56 सालों में सर 59 सालों में यदि हम 1947 लें तो न्यायिक व्यवस्था में आम-वूम-चूर्ण परिवर्तन करने के लिए किसी आयोग या किसी उच्च अधिकार प्राप्त कमिटी की स्थापना आजतक भारतवर्ष में नहीं हुई। इस दिशा में हमने चिंतन ही नहीं किया। हमारी प्रक्रिया 1908 की सिविल प्रक्रिया संहिता और 19वीं सदी का ही अपराध प्रक्रिया संहिता चलते रहे। हमारे यहां सिविल प्रक्रिया संहिता में कुछ परिवर्तन हुए थोड़े परिवर्तन अपराध प्रक्रिया संहिता में भी हुए किंतु आधार भूत ढाँचा वहीं का वहीं है। आधार मूल परिवर्तन कोई नहीं हुआ। जो अंग्रेजों ने भारतवर्ष को एक कॉलोनी मानते हुए यहां के न्याय व्यवस्था के लिए जिस पद्धति की रचना की थी भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने के बावजूद भी हमारी *Civil* और *Criminal Procedure Code* वहीं का वहीं है। दूसरा न्याय व्यवस्था का सबसे अहम हिस्सा – कानून व्यवस्था कहना उचित होगा। कानून व्यवस्था का सबसे बेशकीमती हिस्सा कौन सा है? वह है भारत की पुलिस। मैंने कुछ दिन पहले जानकारी ली थी तो मालूम पड़ा कि पुलिस प्रशासनिक सेवा के अत्यन्त वरिष्ठ व्यक्ति जिनकी ज्ञान, चिंतन और क्षोध की क्षमता में कोई तुलना नहीं हो सकती। ऐसे लोगों के नेतृत्व में एक के बाद एक – कई पुलिस रिफार्मस् कमिशन बने। उन्होंने कई **volume** में रिपोर्ट तैयार किए ये सारी रिपोर्टें आज तक भी धूल चाट रही हैं। एक पर भी अमल नहीं हुआ। और हमारी पुलिस व्यवस्था वही है जो ब्रिटिश शासन में हुआ करता था। आज भी हमारे पुलिस व्यवस्था में हमारे पुलिस के अधिकारी अथवा पुलिस से ज़मीन से जुड़ा हुआ व्यक्ति – पुलिस कॉन्स्टबल जो होता है उसके चिंतन में ये परिवर्तन नहीं आया कि आज अपने ही देश के नागरिकों से, अपने ही गाँव अपने ही शहर के निवासियों से अपने ही भाइयों के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है। ये चिंतन की जो मूलभूत त्रुटि है ब्रिटिश शासन में से कोई परिवर्तन हमारे देश में आज तक नहीं आया। इस दिशा में कोई ठोस प्रयास आज तक हुआ नहीं। विधि मंत्रीजी का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। सैकड़ों मुकदमे आते हैं अभी मुख्य न्यायाधिपतिजी ने संकेत दिया कि सबसे ज्यादा प्रकण्ड – देखिए दीवानी मुकदमों में सबसे ज्यादा दायर होते हैं उनमें से 50 फीसदी से अधिक मुकदमों में प्रतिवादी शासन में होता है। अपराधी प्रकण्ड – 80 90 प्रतिशत प्रकण्डों में अपराधी शासन में होता है पुलिस के माध्यम से सी0बी0आइ0 के माध्यम से या अन्य कोई संस्था जो **investigation** करता है फरियादी पुलिस या शासन होता है। यदि शासन अपना पक्ष समर्थन सक्षम और प्रभावी रूप से करें तो न्यायदान की प्रक्रिया में विलंब नहीं होगा। ठीक इसी प्रकार दीवानी मुकदमों में यदि शासन का पक्ष समर्थन प्रभावी रूप से हो, सार्थक हो तो कोई कारण नहीं कि दीवानी मुकदमों को निपटाने में देर की जाए। एक छोटी सी बात कहना चाहता हूँ। आप आंकड़े इकट्ठे कर ली जाए। पहली पेशी पर जवाबदेह प्रतिपक्षी को होना चाहिए, शासन के तरफ से प्रतिवाद पत्र पॉच बार तारीख की पेशी के बगैर आता ही नहीं तो विलंब का सबसे बड़ा जिम्मेदार कौन है? अभी चर्चा हो रही थी एक **forum** में, मैंने सुझाव दिया था उसमें कि आप को एक आंतरिक व्यवस्था ऐसी बनानी चाहिए कि किसी व्यक्ति को शासन से न्याय मांगने के लिए न्यायालय जाना ही क्यों पड़े? जब न्यायालय से **decree** होती है तो उसका भी तो पालन आप

करते हैं और न्यायालय से जो **decree** होती है माना जाता है कि उसमें न्याय हुआ है। यदि इस सत्ते का अन्वेषण न्यायालय में जाने के पहले कर लिया जाए धारा 80 **Civil Procedure Code** में इस बात की व्यवस्था है कि शासन के विरुद्ध कोई भी मुकदमा दायर करने के पहले दो महीने का नोटिस देना पड़ता है। उद्देश्य क्या है? साधारण आदमी बैठता है खुद निर्णय लेता है शासन की प्रक्रिया होती है दो महीने। वो जो मांग कर रहा है धारा 80 के नोटिस के माध्यम से यदि सही है तो उसे मान लीजिए यदि नहीं है तो उसे मना कर दीजिए। आपकी आंतरिक व्यवस्था हो सकती है। आपका विभाग के किसी वरिष्ठ अधिकारी, एक सक्षम अधिकारी किसी अन्य विभाग का चाहो तो विधि विभाग का ले लीजिए क्योंकि मैंने देखा है कि विधि विभाग के जो सचिव होता हैं वो न्यायपालिका की विधि जानते हैं और कोई अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को ले लीजिए जिसकी निष्पक्षता में संदेह नहीं हो सकता, उसे आप ले लीजिए। ऐसे आप तीन सदस्यों की एक समिति बना लीजिए और जैसे ही धारा 80 की नोटिस आए आप उस नोटिस को उस समिति को सौंप दीजिए – विभाग का व्यक्ति, विधि जानने वाला व्यक्ति और एक निष्पक्ष व्यक्ति – तीनों आपके साथ होंगे। वो जो निर्णय देंगे उसकी **accountability** भी होगी, जो निर्णय देंगे उसे आप मान लीजिए। इसलिए कोई व्यक्ति निर्णय नहीं लेना चाहता क्योंकि कभी-कभी सबसे बड़ी परेशानी **accountability** की है। आज तो निर्णय ले लिया फाइल को आगे भेज दिया, कल को कोई पूछेगा तो क्या जवाब देंगे इसीलिए कभी-कभी निर्णय लेने में हिचकते हैं। अच्छे अधिकारी भी निर्णय लेने में हिचकते हैं कि कभी उनके निर्णय को चुनौती दी गई और यदि न्यायालय से उल्टा निर्णय मिल गया तो क्या करेंगे? इसलिए एक प्रकार की प्रक्रिया – एक आंतरिक प्रक्रिया विकसित की जा सकती है जिसके द्वारा अनेक प्रकंडों का निराकरण मैंने केवल एक उदाहरण दिया है इस पर चिंतन हो सकता है। सोच विचार कर कोई इससे अच्छा तरीका भी निकाला जा सकता है। अभी विधि मंत्रीजी ने धारा 89 का जिक्र किया बहुत अच्छा किया। सी0पी0सी0 के अंतर्गत धारा 89 1999 में जोड़ी गई और 2000 में लागू हुआ। इस धारा के अंतर्गत कुछ नियम बनने थे। **Law Commission of India** ने सिफारिश की। धारा 89 में इस नियम का प्रयोग किया गया है कि कोई भी प्रकरण निर्णय के **stage** पर या **trial** के **stage** पहुंचकर विचार विमर्श प्रारंभ हो, ये अपेक्षा की जाती है कि कोई भी वैकल्पिक निराकरण व्यवस्था का प्रयोग किया जाए [**Alternative Dispute Resolution Methodology**]। वे क्या हैं? पंच फैसला [**Arbitration**], समझौता [**Conciliation**], परस्पर चर्चा [**Mediation**], या **pre-trial settlement**] या लोक अदालत। ये जो चार-पाँच पद्धतियां हैं इन्हें अब धारा 89 में समावेश कर दिया गया है। अब प्रत्येक न्यायाधीश से ये अपेक्षा की जाती है कि किसी भी प्रकरण को वो गवाही के लिए मुकदमा करे इसके पहले वो इस बात का प्रयास करें कि चारों-पाँचों में से कौन-सी पद्धति सही है। तो प्रकरण का निराकरण हो सकता है। यदि वो पद्धति विफल हो जाए तो वो गवाही दर्ज करें और दस्तावेज ग्रहण करें और मुकदमे की सुनवाई करें और निर्णय करें। लोक अदालत बहुत अच्छा काम कर रही है इसमें कोई शंका नहीं है। मैं। सही आंकड़े तो नहीं बता सकता। क्योंकि मैंने हाल ही में एक रिपोर्ट पढ़ी थी - **National Legal Services Authority** की। लाखों की संख्या में मुकदमों में लोक अदालत के माध्यम से निपटे हैं। किंतु अन्य जो चार उपाय हैं न्यायालय में उनका प्रयोग करने की आवश्यकता है, पर उनका प्रयोग कैसे होगा। मैं एक उदाहरण आपको देता हूँ। 1955 में हिन्दू विवाह विधान का रचना हुआ [**Hindu Marriage Act, 1955**]। पहली बार अधिकार मिला हिन्दू धर्म का पालन करने वाले लोगों को कि वे न्यायालय में जाकर के अपने दाम्पत्य विवादों का निराकरण कर सकते हैं। न्यायिक विच्छेद,

तलाक या वैवाहिक संबंधों की पुनर्स्थापना [divorce, judicial separation, restitution of conjugal rights, maintenance, custody of children] इन सबके संबंध में विवाद सुलझी जा सकती है, यह व्यवस्था सन् 1955 में की गई थी। 51 वर्ष बीत गए इस व्यवस्था को। 1955 के हिन्दू विवाह विधान में एक धारा है धारा 23 जिसमें लिखा है कि विवाह संबंधी किसी भी विवाद का निराकरण की प्रक्रिया प्रारंभ करने के पूर्व न्यायाधीश का यह कर्तव्य है कि दोनों पक्षों को बिठाकर समझौता, सुलाह कराने का प्रयास करें। यह आवश्यक है। शुरू शुरू में जब एक दो निर्णय लिए गए तो 1955-65 के बीच एकाद उच्च न्यायालयों ने यह निर्णय लिया कि यदि समझौता, सुलाह के प्रयास किए बिना प्रकरण की सुनवाई कर ली गई और निर्णय लिया गया हो तो ये निर्णय विधि संबंधी नहीं माना जाएगा। हमारे **Former Attorney General, Senior Advocate Shri Soli Sorabjee** आए हुए हैं। मुझे बहुत खुशी है उन्हें यहां देखकर। वे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के विधि वेदता हैं और बड़ा स्वस्थ सामयिक चिंतन उनका रहता है। उनसे अक्सर बातचीत होती रहती है, मुझे पता नहीं था कि वे यहां होंगे, मुझ बड़ी खुशी है उन्हें यहां देखकर। मैं आपकी उपस्थिति का कार्यपालिका और न्यायपालिका दोनों की ओर से हार्दिक स्वागत करता हूं। तो ये जो धारा 23 है इसका प्रयोग होता ही नहीं है। अगर होता भी है तो एक खाना पूर्ति के रूप में। मैंने इसके बारे में सोचा वजह क्या है? वजह यह है कि न्यायाधीश इतना वजन से दबा हुआ होता है मुकद्दमों से, कि उसे समझौता, सुलाह के प्रयास के लिए चर्चा करने का समय ही नहीं होता। समझौता और सुलाह एक धीमी प्रक्रिया है। इसमें समय लगता है। एक बार में, दो बार में आपस में बिठाकर बातचीत करनी पड़ती है। एक तो पहला तो व्यवस्था में दोष है। दूसरा, प्रत्येक न्यायाधीश कितना भी विद्वान न्यायाधीश क्यों न है – कोई कम कोई ज्यादा हो सकता है। किंतु एक अच्छा सुलाहकार, समझौता कराने वाला हो सकता है ये आवश्यक नहीं। इसलिए क्यों? क्योंकि समझौता और सुलाह कराने वाले व्यक्ति के लिए समाशास्त्र **Sociology** और **Psychology** इनका विशेषज्ञ होना आवश्यक है। तभी वह समझौता और सुलाह करा सकता है। अपेक्षा ये थी कि प्रत्येक पारिवारिक न्यायालय या ऐसा न्यायालय जो दाम्पत्य विवादों का सुनवाई करता है उसके साथ एक समझौता कराने वाला व्यक्ति उसके साथ जुड़ा रहे। ताकि वो **Sociological** और **Psychological point of view** से विवादग्रस्त व्यक्तियों के बीच समझौता और सुलाह करने का प्रयास करें और यदि वो विफल हो जाए तो फिर न्यायाधीश से कहें कि आप इस मामले की सुनवाई करें। एक और बारीकी से सोचने वाली बात है – यदि न्यायाधीश स्वयं दोनों वादी और प्रतिवादी के बीच समझौता और सुलाह करने का प्रयास करता है तो उसे न्यायाधीश का चोला उतारकर उनके साथ मित्रवद व्यवहार करना पड़ता है। उन्हें भी अपना दुख दर्द अपने साथ बॉटना पड़ेगा। अनेक तर्क ऐसे होते हैं तो छिपे हुए होते हैं वे न्यायाधीश की जानकारी में समझौते सुलाह के चर्चा में आ जाते हैं और जब वे आ जाते हैं तब वही न्यायाधीश यदि प्रकण्ड की सुनवाई करके निर्णय करता है तो उसका निर्णय निष्पक्ष नहीं हो सकता, उसका निर्णय उस चर्चा से प्रभावित होगा। कहीं न कहीं उसके मस्तिष्क के कोने में वो बातें पड़ी रहेंगी जो जानकारी में है रिकॉर्ड अतिरिक्त, ये कुछ कारण हैं जो एक **independent agency for mediation and conciliation** प्रत्येक न्यायालय के साथ जुड़े होना आवश्यक है। मैं अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, केनडा और अन्य देशों में जो पद्धतियां चली हैं उनका अध्ययन किया है और अमेरिका में, कैलिफोर्निया में और ओहायो में जहां ये पद्धतियां बहुत जड़ पकड़ चुके हैं वहां मैंने ये पद्धति कैसे प्रयोग किया जाता है उसको मैंने देखा है। दो प्रकार की पद्धतियां हैं जिनका वहां की शब्दावली में कहते हैं **court annexed mediation and conciliation and court referred mediation and conciliation**। एक तो न्यायालय का

विभाग होता है, वहां न्यायालय के परीसीमा में पक्षकारों में समझौता सुलाह का प्रयास करता है। और एक पद्धति वो होती है कि विवाद का अध्ययन करने के बाद एक स्वतंत्र **agency** को सौंप दिया जाता है कि आप उनके बीच समझौता सुलाह करने का प्रयास कीजिए यदि नहीं हो तो इस मुकद्दमे को लौटा दीजिए। उसका परिणाम ये हुआ है कैलिफोर्निया में जो विशेषकर जो **commercial disputes** होते हैं इनका निराकरण न्यायालय में प्रस्तुत होने से चौदह महीने के अंदर हो जाता है। जो मुकद्दमे **alternative dispute resolution** के लिए **refer** कर दिए जाते हैं। 46 फीसदी मामले चले जाते हैं और उनमें से 94 प्रतिशत मामले खत्म हो जाते हैं। इतनी बड़ी संख्या में प्रभावी नीति से इस पद्धति का प्रयोग किया जाता है। मैं। माननीय मुख्य मंत्रीजी से और विधि मंत्रीजी से इसका उल्लेख करते हुए ये अपील करता हूं कि मध्य प्रदेश पहला राज्य होना चाहिए जिसमें इस पद्धति का प्रयोगिक रूप से प्रयोग हो। आप चमत्कार कर सकते हैं अपने प्रदेश में और आपका प्रदेश पूरे देश में एक अनुकरणीय दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। न्याय व्यवस्था पर कितना खर्च होता है कभी आप मांगकर देखिए। आप ये देखिए कि अपने मुकद्दमों में अपना प्रतिवाद करने के लिए कितना खर्चा होता है? जितना खर्चा आपका होता है 10, 20 प्रतिशत कम यदि आप न्यायालय में **mediation and conciliation services** का प्रारंभ कर देंगे तो उससे कम होगा आपका खर्चा। और आप ये पाएंगे कि वो विवाद जिसमें न केवल शासन पक्षकार है वे सुलझते हैं बल्कि अन्य प्रकरण जिसमें शासन पक्षकार नहीं है वे भी सुलझते हैं। बारंबार मांग आती है कि न्यायाधीश की संख्या बढ़ाए। अभी हमारे मुख्य न्यायाधीशजी ने कहा कि मकान नहीं हैं, **court room** नहीं है, **stenographer** नहीं है, **typewriter** नहीं है, **computer** नहीं है, ये सब मांगें आती हैं। जब आप पैसे देंगे तभी तो मांगें पूरी होंगी। यदि आप मुकद्दमे दूसरी पद्धति से जल्दी निपटा दें तो हम सारी मांगें आपसे वापिस ले लेंगे। जितने न्यायाधीश हैं वही हमारे लिए काफी हैं। किंतु उन्हें आपका सक्षम बनाना पड़ेगा। ताकि उनका दबाव कम पड़े। उनपर काम का वजन कम करना पड़ेगा। उनपर काम का वजन कम कीजिए और उनकी सक्षमता में योगदान कीजिए। इसमें कोई संदेह नहीं है। अंततोगत्वा यदि आप विस्तृत और विषद दृष्टिकोण से देखेंगे तो इन सुझावों को लागू करने में कहीं कोई कठिनाई नहीं है और आपका लाभ होगा। मैंने देखा अभी एक रिपोर्ट में **Criminal Justice System Report** में बताया गया कि यदि आप जो मैजिस्ट्रेट रिमांड देते हैं यदि जो व्यक्ति बंदी बना लिया जाता है तो उसे 24 घंटे के अंदर उसे न्यायालय में प्रस्तुत करना ज़रूरी है। अक्सर जो बंदी फरार हो जाते हैं यानि भाग जाते हैं, वे तब भाग जाते हैं जब इन बंदियों को कारागार से न्यायालय ले जाया जा रहा हो या लौटाया जा रहा होता है। मैं आप से अपील करता हूं आप आंकड़े इकट्ठे कीजिए कि केवल न्यायालय में बंदियों को ले जाने में और लौटाकर लाने में आपका कितना खर्च होता है। आप इसे देखिए और इसके खर्च में से इसमें से आधी रकम आप मेरे जिम्मे कीजिए मैं दो महीने मैं। उपलब्ध हूं आपके लिए **Magistrial Court** और **Prison** इनके बीच आप **video conferencing** की सुविधा उपलब्ध करी दीजिए आधे घंटे में हो जाएगा रिमांड की जो हमारी पद्धति है उसमें आवश्यक प्रावधान उसकी पूर्ति हो जाएगी, आधा खर्चा बच जाएगा। कानून का सम्मान भी होगा, कानून का उल्लंघन नहीं होगा, आपकी जिम्मेदारी कम हो जाएगी, सुरक्षा व्यवस्था बढ़ जाएगी। ऐसे अनेक दृष्टांत हो सकते हैं जिसका मैं समझता हूं कि आपको इस कार्यशाला में चर्चा करना चाहिए। मैं। अपील करना चाहता हूं यहां जो कार्यपालिका के शीर्षस्थ प्रतिनिधिगण मौजूद हैं, उनसे कहना चाहता हूं कि प्रदेश में विधि की शासन की व्यवस्था हो नहीं सकती यदि न्याय व्यवस्था सक्षम नहीं है और यदि उसे कार्यपालिका का सम्पूर्ण सहयोग उसे प्राप्त नहीं है। यदि



किसी व्यक्ति के चोट लगती है तो उसका उपचार है – अस्पताल जा सकता है, इलाज करा सकता है, किंतु जिस व्यक्ति के साथ अन्याय होता है उसके शरीर पर नहीं आत्मा पर चोट लगती है। व्यक्ति शरीर की चोट सहन कर सकता है किंतु आत्मा की चोट कभी सहन नहीं कर सकता। यदि इसलिए अन्याय का निराकरण नहीं होता तो उसकी आत्मा विद्रोह करती है और ये विद्रोह न केवल कानून व्यवस्था बनाए रखने में बाधक होता है बल्कि देश या प्रदेश की प्रगति और उन्नति में बाधक होता है। इसलिए मैं आज आप से यह अपील करना चाहता हूँ कि कार्यपालिका और न्यायापालिका को निःसंदेह सहयोग करना चाहिए जो उनके सम्मान लक्ष्य हैं उनके ओर बढ़ना चाहिए और एक दूसरे का सहयोग इस प्रकार करना चाहिए कि वे अपनी-अपनी मर्यादा में रहें और एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्यों को स्मरण करते हुए उसका पालन करें।

मैं, अंत में एक छोटा सा उदाहरण आपको देना चाहता हूँ। मैं। जब वकालत करता था तब मैंने देखा कि प्रत्येक जगह के मुकाम पर एक **District Monitoring Committee** मध्य प्रदेश में हुआ करती थी। मुझे पता नहीं अब वो है या नहीं। मैं 1976 में जब जिला सत्र न्यायाधीश नियुक्त हुआ मैंने अंतिम बार उस समक्ष में मैंने ग्वालियर में वो मीटिंग होते हुए देखी। इस मीटिंग में **District and Sessions Judge**, **District Magistrate** और **Superintendent of Police** अर्थात् कानून न्याय व्यवस्था से संबंध रखने वाले जिला के तीनों वरिष्ठ अधिकारी समय-समय पर दो-तीन महीने में इकट्ठा बैठते हैं। एक दूसरे की समस्याओं और कठिनाइयों की चर्चा करते हैं और विधान के दायरे में रहते हुए इनका समाधान कैसे हो सकता है इस पर विचार करते थे। मैंने देखा कि धीरे-धीरे इस व्यवस्था में गिरावट आई। कैसे गिरावट आई? पिफर एस0पी0 साहब ने ये कहा कि मैं तो काम में व्यस्त हूँ, मैं अपने डी0एस0पी0 साहब को भेज रहा हूँ चर्चा करने के लिए। **District Magistrate** महोदय ने ये कहना शुरू किया कि आज मुख्य मंत्रीजी या हमारे मंत्रीजी जिले में आए हुए हैं, मैं। तो उनके साथ व्यस्त हूँ मैं। ने अपने **Deputy Collector** को भेजा है उनसे आप चर्चा कर लीजिए। अब **District and Sessions Judge** ये तो नहीं कह सकता था कि मैं। तो इस मीटिंग में भाग नहीं ले सकता अपने **Additional District Judge** या **Chief Judicial Magistrate** से कहता हूँ इसमें भाग लेने के लिए। हुआ ये कि धीरे-धीरे इस सभा की जो महत्ता हुआ करती थी वो निश्प्रभावी हो गई और मुझे लगता है अब इस प्रकार की मीटिंग होती है या नहीं? शायद हो रही है, पर किस स्तर पर हो रही है और उनका क्या प्रभाव पड़ रहा है इसकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। यदि हो रही है तो बहुत अच्छा है, इसे बनाए रखें और इस बात का प्रयास कीजिए इस मीटिंग में **District Magistrate** और **Superintendent of Police** को अवश्य भाग लेना चाहिए और यदि वे परस्पर बैठकर इस बात की चर्चा करेंगे तो एक दूसरे की समस्याओं का समाधान कर सकेंगे, एक दूसरे के प्रति उन्हें शिकायत करने का मौका नहीं मिलेगा और इन सब का लाभ अंततोगत्वा इस प्रदेश के नागरिकों को मिलेगा जो न्याय की आशा में भटकते रहते हैं।

आज इस कार्यशाला में भाग लेते हुए मुझे निःसंदेह बहुत प्रसन्नता है। मेरे स्वागत में कुछ शब्द कहे गए। मुझे सुनकर बड़ा संकोच होता है कि कभी-कभी मैं अपने आपको ऐसा अनुभव करने लगता हूँ कि ऐसा क्या हो गया कि मेरे अपने प्रदेश में ही मेरी अपनी परिचय देने की आवश्यकता हो गई। मैं तो इस प्रदेश का हूँ और इस प्रदेश की मुट्ठी में मेरी जगह है और मैं इस प्रदेश का हमेशा रहूंगा। मेरा वनवास जरूर कम समय के लिए रहा है। मतलब भगवान राम

ने 14 वर्ष का वनवास लिया था, कहीं मेरे मन में नित्य अनुभोग न हो जाए कि चौदह वर्ष की वजह से मैं भी अपने आप को भगवान राम की तुलना करने लगूं। इसलिए ईश्वर ने यह व्यवस्था की कि मेरा वनवास 14 वर्ष की बजाय 12 वर्ष में समाप्त हो। 1994 में मैंने इस प्रदेश को छोड़ा था, 2005 के अंत में मैं फिर न्यायाधीश का पद त्यागकर पुनः इस प्रदेश में लौट रहा हूं। तो 12 वर्ष के वनवास के बाद फिर आपके बीच उपस्थित हूं, उपस्थित रहूंगा, मुलाकातों का यह सिलसिला जो आज शुरू हुआ है कार्यपालिका और न्यायापालिका का ये सिलसिला चलते रहना चाहिए, इससे हम एक दूसरे को बेहतर समझेंगे और मिल-जुलकर कुछ सवस्थ निमार्णात्मक चिंतन हम कर सकेंगे और इस देश के नागरिक और प्रत्येक उस व्यक्ति की सेवा कर सकेंगे जिसकी सेवा करने का संकल्प हम सेवा में प्रवेश करने के दिन लेते हैं किंतु कदाचित पूरा नहीं कर पाते। इन शब्दों के साथ पुनः एक बार फिर प्रणाम और आप सबका आभार ज्ञापित करता हूं।

\*\*\*\*\*